E-ISSN: 2706-8927
P-ISSN: 2706-8919
www.allstudyjournal.com
IJAAS 2020; 2(3): 194-195
Received: 07-05-2020
Accepted: 10-06-2020

चन्दीर पासवान
शोधार्थी, विश्वविद्यालय
हिन्दी–विभाग, ल.ना.मिथिला
विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार,
भारत

Corresponding Author:
चन्दीर पासवान
शोधार्थी, विश्वविद्यालय
हिन्दी–विभाग, ल.ना.मिथिला
विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार,
भारत

प्रेमचन्द के साहित्य में सामाजिक जागृति का विवेचन

चन्दीर पासवान

सारांश
प्रेमचन्द आदर्शवादी रचनाकार रहे हैं, परन्तु बितते समय के झंझावात ने यथार्थवादी बना दिया। वे समाज में घटीत हो रही हर–एक घटनाओं को रू–ब–रू उद्घाटित कर अपना साहित्यिक उत्तरदायित्व का निर्वाह करने लगे। उन्होंने मुख्य रूप से समाज को दो वर्गों में बाँटा एक शोषक वर्ग दूसरा शोषित वर्ग शोषकों के प्रति नफरत एवं शोषितों के प्रति सहानुभूति का भाव का वर्णन किया।

इस भाग्यवादी समाज में स्त्री को देवी का दर्जा दिया जाता है, वहीं भोगवादी प्रवृत्ति वाले समाज में स्त्री को भोग की वस्तु ही समझ जाता है। परंतु प्रेमचन्द जी वेश्या को भी उस नारकिय स्थितियों, परिस्थितियों और स्थानों से मुक्ति हेतु रचना करते हैं, तभी तो कोकिला खुद वेश्यावृति में होते हुए अपनी पुत्री को उस कुत्सित वातावरण का छाया तक लगने देना नहीं चाहती। यह संदर्भ नारी जागरूकता और नारी शक्तिकरण को दर्शाता है।

प्रेमचन्द जी अपनी व्यापक दृष्टि के कारण भारत का गाँव से लेकर शहर का ऐसा वर्णन करने में सफल हुए हैं, जिसे विश्व पटल पर भारतीय सभ्यता, संस्कृति, संस्कार, किसान–मजदूर आदि को दिखाने के लिए प्रेमचन्द जी के साहित्य को ही दर्पण के रूप में दिखाया जाता है।

भूमिका
प्रेमचन्द के समय में भारत पर अंग्रेजों का शासन था, लेकिन राजनीतिक आन्दोलन अपनी चरम पर था, अंग्रेजों के चंगुल से देश को छुराने के लिए तो एक ओर समाज–सुधार का स्वर चारो ओर सुनायी देता था। भारतीय जनता में विद्रोह की लहर फैल गयी थी, इस प्रकार की परिस्थितियों में श्रेष्ठ साहित्यकार भला कैसे मौन रह सकता था? ''प्रेमचन्द सच्चे अर्थ में 'कलम के सिपाही' थे। वे साहित्यकार के दायित्व को भली–भाँति जानते और मानते थे। लेखन उनके लिए एक मिशन था, व्यवसाय नहीं उन्होंने कभी धन के लिए कलम को नहीं बेचा।'' [1]

प्रेमचन्द व्यक्ति के विकास का केन्द्र–बिन्दु समाज को मानते थे, इसलिए वे समाजवाद की स्थापना पर बल दिया, वे लोगों को भी जीवन–मूल्यों की रक्षा का सन्देश देते हैं। उनमें मानव–मूल्यों को परखने की अद्भूत क्षमता थी। प्रेमचन्द जी का मानना था कि–

''देहिक व्यथा चाहे नश्तर से दूर हो जाय, मानसिक व्यथा सहानुभूति और उदारता से ही शान्त हो सकती है। किसी को नीचा समझकर हम उसे ऊँचा नहीं बना सकते, बल्कि उसे और नीचे गिरा देते। कायर कहने से बहादुर नहीं हो जायेगा कि 'तुम कायर हो'। हमें यह दिखाना होगा कि उसमें शाहस, बल, धैय सब कुछ है केवल उसे जगाने की जरूरत है।'' [2]

प्रेमचन्द जी का अपना विचार ही था समाज में बुड़ाई की नींब हिलाकर उसे धरासायी न कर के समाज में व्याप्त बुड़ाई को जड़ से उखार फेंकना चाहिए। इसलिए वे अपनी रचनाओं में गाँव–समाज का चित्रण इस प्रकार किये जिसे देखने से पता चलता है कि इन्होंने कभी धरती का दामन नहीं छोड़ा। ठीक वैसे जैसे सागर में उड़ने वाली पंक्षी पुनः जहाज पर ही आकर बैठती है, उसी प्रकार प्रेमचन्द की कहानियाँ भी कल्पना के पंख लगाकर उड़ान भरते हैं फिर समाजिक यथार्थ वर्णन में पुनः वापस आ जाते हैं, वे अपनी उपन्यासों, कहानियों में सामाजिक रूढ़ियाँ लोगों का अपनी स्थिति से समझौता करने की स्थिति, विरोध करने पर मिलने वाली प्रताड़ना, स्त्री का अस्तित्व, समाज का वर्गों में विभाजित होना अपने से नीचे वाले लोगों का शोषण आदि। सामाजिक परिप्रेक्ष्य का जैसा चित्रण करते हैं वह अन्य किन्हीं कथाकार से सम्भव नहीं हो सकता। प्रेमचन्द जी की कहानियाँ पाठकों के दिल में शोषितों के प्रति करूणा और शोषकों के प्रति क्रोधाग्नि का बौछार करने पर मजबूर कर देता है। प्रेमचन्द जी की सामाजिक चेतनों की आन्दोलन में शामिल होकर अपना योगदान प्रदान कर तृप्ति का अनुभव करने के लिए बाध्य कर देती है। प्रेमचन्द जी की कहानी संग्रह मानसरोवर के भाग 4 जैसे 'दरोगा', 'आगा–पिछा', 'प्रेम का उदय', 'सवासेर गेहूँ' के माध्यम से वर्ग व्यवहार, अलग–अलग परिस्थितियाँ, मानसिकता को ये चार कहानियाँ भी कैसे सामाजिक चेतना को झकझोर देती है, जो देखने योग्य है।

समाज में जातिवाद, भेद–भाव सभी समय में मौजूद रहा है। उदाहरण 'आगा–पिछा' नामक कहानी का पात्र भगतराम की अभिव्यक्ति– ''मै जाति का चमार हूँ। मेरे पिता स्कूल के इंस्पेक्टर के यहाँ

अर्दली थे, उनकी सिफारिश से मैं स्कूल में भरती हो गया, तब से भाग्य से लड़ता–भिड़ता चला आ रहा हूँ। पहले तो स्कूल के मास्टर मुझे छुते ही न थे। वह हालत तो अब नहीं रही किन्तु लड़के अब भी मुझसे खिचे–खिचे से रहते हैं।'' [3] चमार जाति के होने के कारण जो उन्हें प्रताड़िर होना पड़ा, आज उसी प्रकार के व्यवहार को भोगनें वाले के लिए यह विचार एक प्रकार का प्रतिनिधित्व है। वहीं हम दूसरी कहानी 'सवासेर गेहूँ' का पात्र ब्राह्मण अपने जाति का दम्भ और अहंकार दिखा रहा है। ''वहाँ का डर तुम्हें होगा, मुझे क्यों होने लगा। वहाँ तो सब अपने ही भाई–बन्धु हैं ऋषि–मुनि सब तो ब्राह्मण हैं, जो कुछ बने, बिगरेगी सम्भाल लेंगे।'' [4]

जाति भेद के कारण एक गर्व का अनुभव करता है जो खुद को ब्राह्मण मानता है और दूसरा शर्मिन्दगी का अनुभव करता है, मुँह छुपाता है। ऐसे में प्रेमचन्द भेद–भाव रहित समाज का सपना अपने पात्रों के माध्यम से देखते नजर आते हैं। वास्तव में जाति–पाति का भेद मानव को मानव नहीं रहने देगा, ये मानवता के बीच में नफरत का दीवार खड़ा कर देता है। 'सवासेर गेहूँ' का पात्र शंकर कहता है कि– ''आखिर निश्चय किया कि कहीं से गेहूँ का आँटा उधार लाऊँ, पर गाँव भर में गेहूँ का आँटा न मिला। गाँव में सब मनुष्य–मनुष्य ही थे, देवता एक भी न था। अतएव देवताओं का खाद्य–पदार्थ कैसे मिलता।'' [5]

प्रेमचन्द जी ने भारतीय गरीबों के गरीबी का अनुभव बहुत करीब से किया और इस बिन्दु पर जोर दिया कि मानव को मानवता की दृष्टि से देखा जाय, अर्थात गरीब की दृष्टि से नहीं, चारा और रोटी को महत्त्व दी जायेगी, झुठी प्रतिष्ठा को नहीं। जरूरतमंदों के मदद की भावना का आदर किया जायेगा। उससे संतुष्ट होने की भावना का नहीं।

समाज में जब गरीबी होगी तो उससे उत्पन्न होगी खीज, घुटन, अभाव, विवशता आदि समाज को चैन से बैठने नहीं देगी। 'प्रेम का हृदय' कहानी की पात्रा बंटी कहती है– ''मै, क्या जानू, तुक क्या हो? मैं तो यही जानती हूँ कि यहाँ धेले–धेल की चीज के लिए तरसना पड़ता है। यही सबको पहनते–ओढ़ते, हँसते–खेलते देखती हूँ। क्या मुझे पहनने–ओढ़ने, हँसने–खेलने का साध नहीं है? तुम्हारे पल्ले पड़कर जिन्दगानी नष्ट हो गयी।'' [6]

मनुष्य का गरीबी से पीछा छुड़ाने के उद्देश्य से अपना पेट काट–काट कर अपनी स्थिति में सुधार लाने की कोशिश में जब विफलता हाथ लगती है तो 'सवासेर गेहूँ' के पात्र शंकर सी हो जाती है। सुख–दुःख के चक्र अगर माना जाय तो एक के बाद दुसरे का आगमन माना जा सकता है। परंतु गरीबी का चक्र गरीबी से शुरू होकर गरीबी पर ही अन्त होता है। ''गुलामी समझो, चाहे मजदूरी समझो, मैं अपने रुपये भराये बिना तुमको कभी नहीं छोरूँगा। तुम भागोगे तो तुम्हारा लड़का भरेगा।'' [7]

इस पंक्ति में अमीरों के चंगुल में जकड़े गरीब की छटपटाहट से उन्हें कोई लेना–देना नहीं है, आदमी से अधिक पैसा का महत्त्व दिया जा रहा है।

समाज में जब मांगने पर अधिकार नहीं मिलता है, आदर्शों के झंडे लहराने पर भी जब कुछ प्राप्त नहीं होता, तब विद्रोह करना ही उचित जान पड़ता है। 'आगा–पिछा' कहानी की पात्रा श्रद्धा अपनी माँ से कहती है कि– ''मनुष्य परिस्थितियों का दास होता है आप जिस वायुमंडल में पली उसका असर तो पड़ना ही था, किन्तु पाप के दल–दल में फंसकर निकल आना अवश्य ही गौरव की बात है। बहाव की ओर से नाव ले जाना तो बहुत सरल है, किन्तु जो नाविक बहाव के विपरीत ले जाता है, वही सच्चा नाविक है।'' [8]

इस उद्धृत पंक्ति में कोकिला के मन में एक विचार आता है, जो खुद जिस नारकीय परिस्थितियों को भोगी है, उससे अपनी पुत्री को वंचित रखना चाहती है। भारतीय नारी के उन आदर्शों को प्रस्तुत करती है जो अपनी पुत्री को व्यभिचारणी नहीं होने देता।

प्रेमचन्द समाज में घट रही घटनाओं का रू–ब–रू इसीलिए दिखलाते है कि जितना ही सुधार हो जाय, ऐसे में हम देखते हैं कि समाज विद्रोह से खौफ खाता है, क्योंकि विद्रोह की आर में समाज के खोखलेपन का नीव दिख जाने का खतरा रहता है।

प्रेमचन्द यह भी दिखाते हैं कि जिस समाज में नारी का स्थान देवी का है वहीं उसे भोगवादी प्रवृत्ति वाले पुरुषों के कुत्सित वासना का शिकार होना पड़ता है। 'आगा–पिछा' कहानी के किरदार कोकिला नामक वैश्या की पुत्री के साथ भी वैसे लोगों का कुत्सित दृष्टि है जिससे वह कहती है– ''क्या यह पावन ज्योति भी वासना के प्रचंड आघातों का शिकार हो जायेगी? मेरे प्रयत्न निश्फल हो जायेंगे? आह! क्या कोई ऐसी औषधि नहीं है, जो जन्म के संस्कारों को मिटा दे?'' [9]

समाज का एक और पक्ष जिसे जड़ से उखाड़े बिना स्वस्थ समाज की कल्पना नहीं की जा सकती है वह भ्रष्टाचार। देखा जाता है कि लोगों के मन में किसी प्रकार का अवैध धन के प्रति आशक्ति बढ़ती है, जब वेतन से काम नहीं चलता है, तब लोग घूस का दामन थाम लेता है और यह प्रवृत्ति उसके जीवन का अंग बनते देर नहीं लगता। ऐसा 'दारोगा जी' कहानी में महसूस किया जा सकता है। दारोगा का ये कहना है कि– ''अगर हर एक मामले का चालान करने लगे, तो दुनियाँ पुलिस वालों को और भी बदनाम करें। आपको यकीन न आयेगा जनाब रुपये की थैलियाँ लेकर थाने के आगे–पीछे चक्कर लगायी जाती हैं। हम हजार इनकार करें, पर चारों तरफ से ऐसे दबाव पड़ते हैं कि लाचार होकर लेना ही पड़ता है।'' [10]

समाज में ऐसा देखा जाता है कि घूस लेने वाले से ज्यादा उतावले घूस देने वाले रहते हैं, क्योंकि घूस के बल पर झूठ को सत्य सावित करना जो रहता है। इधर पुलिस भी इंसान ही होता है, जिसकी इच्छा घूस न लेने पर रहते हुए भी लेना पड़ता है, अंततः प्रवृत्ति ही हो जाती है।

निष्कर्ष

अंतः निष्कर्ष के रूप में यही कहा जा सकता है कि जिस प्रकार सरोवर में उतड़कर ही सरोवर की गहराई का पता लगाया जा सकता है, ठीक उसी प्रकार प्रेमचन्द जी की साहित्य को पढ़ने से ही नही उनकी गहराई में उतरकर उसकी दृष्टि से मूल्यांकन किया जा सकता है। प्रेमचन्द जी के मानसरोवर की यात्रा का हर एक कहानी को नहीं भी पढ़कर किया जाय तो भी फलदायक होती है। साहित्य समाज का दर्पण होता है और प्रेमचन्द जी का साहित्य आज अपनी इसी स्वार्थ–पड़ता को सिद्ध कर रहा है। सामाजिक जागृति और चेतना का सुगंध चप्पे–चप्पे पर बिखेरता नरज आ रहा है।

संदर्भ

1. 'हिन्दी साहित्य एवं साहित्यकार' : अनीता कोठारी, भाग–2, मार्ग पब्लिशर्स, जयपुर
2. 'मानसरोवर' : प्रेमचन्द, भाग– 4, पृ०– 83
3. 'मानसरोवर' : प्रेमचन्द, भाग– 4, पृ०– 59
4. 'मानसरोवर' : प्रेमचन्द, भाग– 4, पृ०– 79
5. 'मानसरोवर' : प्रेमचन्द, भाग– 4, पृ०– 82
6. 'मानसरोवर' : प्रेमचन्द, भाग– 4, पृ०– 80–81
7. 'मानसरोवर' : प्रेमचन्द, भाग– 4, पृ०– 139
8. 'मानसरोवर' : प्रेमचन्द, भाग– 4, पृ०– 137
9. 'मानसरोवर' : प्रेमचन्द, भाग– 4, पृ०– 96
10. 'मानसरोवर' : प्रेमचन्द, भाग– 4, पृ०– 142